नियमसार शुद्धभाव अधिकार की अन्तिम पाँच गाथा। यह शुद्धभाव अर्थात् पर्याय नहीं, ध्रुव। त्रिकाली ध्रुव लेना। वह शुद्धभाव है। वैसे तो पर्याय में-अवस्था में तीन प्रकार के भाव हैं—शुभ, अशुभ, और शुद्ध। अशुभ, पापबन्ध का कारण; शुभ, पुण्यबन्ध का कारण; शुद्ध, धर्मस्वरूप। ये तीन प्रकार के परिणाम हैं। यह बात अभी यहाँ नहीं है। यह परिणाम शुद्ध... धर्म के शुद्ध परिणाम सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र, जो मोक्ष का यथार्थ मार्ग है, वह किसके आश्रय से उत्पन्न होता है? यह यहाँ शुद्धभाव ध्रुव का अधिकार है। समझ में आया? ऊपर शुद्धभाव है न? वह त्रिकाली शुद्ध। अखण्ड आनन्द चैतन्यशक्ति की व्यक्ति। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र वह मोक्ष का मार्ग, वह चैतन्यशक्ति की व्यक्ति / प्रगटता छे। प्रगटता है। गुजराती आ जाती है न? आहाहा!

क्या कहा? कि आत्मा जो ज्ञान, आनन्द आदि अनन्त शक्ति का पिण्ड प्रभु है, वह शक्तिरूप है, वह स्वभावरूप है। उसमें व्यक्तिरूप अर्थात् प्रगटरूप, त्रिकाली सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का पिण्ड जो आत्मा है, उसमें अवलम्बन से जो सम्यग्दर्शन, पर्यायरूप मोक्षमार्ग के कारणरूप जो प्रगट होती है, उस पर्याय की बात नहीं है। वह पर्याय जिसमें से उत्पन्न होती है, ऐसे शुद्ध ध्रुवभाव का अधिकार है। आहाहा! ऐसी बात! पहले यह बात। अब उस शुद्धभाव के आश्रय से, जो त्रिकाली शुद्धभाव है, उसके अवलम्बन से सम्यग्दर्शन परिणाम धर्मरूपी मोक्ष का मार्ग, उसकी शुरुआत सम्यग्दर्शन से होती है, तो वह सम्यग्दर्शन त्रिकाली ध्रुव चैतन्य सनातन शक्तिरूप चैतन्यस्वभाव, त्रिकाली शक्ति स्वभावरूप है। उसकी दृष्टि करने से सम्यग्दर्शन के परिणाम, पर्याय; परिणाम कहो, पर्याय कहो, अवस्था कहो, वह धर्म की पहली दशा उत्पन्न होती है। आहाहा!

यह यहाँ आया। **इस सम्यक्त्वपरिणाम का...** यहाँ से लेना है। अभी सम्यक्त्वपरिणाम कहा न? कि त्रिकाली भगवान अनादि-अनन्त नित्य ध्रुव वस्तु भगवान आत्मा के आश्रय से / अवलम्बन से, उसके लक्ष्य से जो सम्यग्दर्शनपरिणाम / पर्याय / अवस्था उत्पन्न होती है, वह मोक्ष का मार्ग है। उस सम्यग्दर्शनपरिणाम का **बाह्य सहकारी कारण...** उसका बाह्य सहकारी कारण / निमित्त कौन? **वीतरागसर्वज्ञ के मुखकमल से निकला हुआ...** आहाहा! वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर, त्रिलोकनाथ जिनेन्द्रदेव के **मुखकमल से निकला हुआ...** यह भी व्यवहार से कहा है—मुखकमल से। वरना तो भगवान की वाणी निकलती है, वह पूरे शरीर में से ओम ध्वनि उठती है परन्तु यहाँ लोग बाह्य से समझते हैं, इस अपेक्षा से इन्होंने **वीतरागसर्वज्ञ के मुखकमल से निकला हुआ...** ऐसा लिया है। समझ में आया?

प्रभु की वाणी मुख से नहीं निकलती। होंठ बन्द, कण्ठ कंपना, वह बन्द; पूरे शरीर में से ओमध्वनि उठती है। वह ॐकारध्वनि सुनकर... 'ॐकार ध्वनि सुनी अर्थ गणधर विचारे।' जो सन्त गणधर हैं, साधु के गण अर्थात् झुण्ड के धरनेवाले। साधु-सन्त आत्मा के आनन्द के अनुभवी, ऐसे जो सन्त के गण अर्थात् समूह, उनके जो प्रमुख, उन्हें यहाँ गणधरदेव कहते हैं। वे गणधरदेव 'ॐकारध्वनि सुनी अर्थ गणधर विचारे; रचि आगम उपदेश।' और उसमें से - भगवान की वाणी में से आगम की रचना करते हैं। 'रचि आगम उपदेश, भविक जीव संशय निवारे।' भव्य प्राणी योग्य और पात्र जो होते हैं, वे संशय अर्थात् मिथ्यात्व का नाश करते हैं। उन्हें सम्यग्दर्शन के परिणाम उत्पन्न होते हैं। समझ में आया? सूक्ष्म बात है, प्रभु! बात में फेरफार बहुत हो गया है। इसलिए दूसरी बात लगेगी। आहाहा!

जो सम्यग्दर्शन के परिणाम... है? उनका बाह्य कारण कौन? अन्तरकारण तो अन्तर त्रिकाली ध्रुव भगवान है, उसके अवलम्बन से सम्यग्दर्शन होता है। अन्तरंग कारण तो अन्तर आत्मा है। आहाहा! अन्तरंग कारण और बहिरंग कारण। रजनीभाई! निकाला था न? क्या कहलाता है? संघ। संघ निकाला था।

मुमुक्षु : इन प्रवीणभाई ने।

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रवीणभाई ने? ठीक, रजनीभाई ने निकाला था। ये सब भाई हैं। ये सब करोड़पति हैं। एक व्यक्ति ऐसा कहता था। होवे वह ठीक, हमने तो सुना है। ये वलुभाई डॉक्टर है न? वलुभाई कहते हैं कि छह भाई हैं, उन प्रत्येक के पास एक-एक

करोड़ रुपये हैं, ऐसा कहते थे। भले कम-ज्यादा हो। वे वलुभाई नहीं थे? वे डॉक्टर। वलुभाई नहीं थे? आंकड़ियावाले। आंकड़िया नहीं, आठकोटवाले। बड़े डॉक्टर हैं। बड़ा दवाखाना सत्रह लाख का था। सब निकाल दिया। आहाहा! आत्मा सम्यग्दर्शन के परिणाम; परिणाम अर्थात् उसकी अवस्था। त्रिकाली अवस्थायी, ध्रुवस्वरूप त्रिकाली अवस्थायी पदार्थ भगवान आत्मा, उसके आश्रय से उत्पन्न होता है। अन्तरंग कारण तो ध्रुव है। समझ में आया? अभी तो धर्म की पहली सीढ़ी। धर्म का पहला सोपान। आहाहा! भाषा ऐसी है। दामोदरभाई! जरा नवीन लगे ऐसी है, बापू! ऐसी वस्तु है। क्या कहें? आहाहा! तीन लोक के नाथ सीमन्धरस्वामी भगवान के पास कुन्दकुन्दाचार्य आठ दिन गये थे। आहाहा! संवत् ४९ (में) दो हजार वर्ष पहले। वहाँ से आकर यह सब बनाया है। उसमें भी यह पुस्तक (नियमसार ग्रन्थ) तो स्वयं के लिये बनाया है। अन्त में लिखा है न? १८७वीं गाथा, देखो! अन्तिम गाथा है न? अन्तिम गाथा। १८७, आहाहा! (गाथा) १८७, पृष्ठ ३७१, उसमें पहली गाथा, ऊपर।

'**णियभावणाणिमित्तं**' ऊपर गाथा। '**णियभावणाणिमित्तं**' मैंने मेरे निमित्त के भाव से '**मए कदं**' मैंने कहा। '**णियमसारणामसुदं**' यह नियमसार मैंने तो मेरे आत्मा के लिये बनाया है। आहाहा! '**णच्चा जिणोवदेसं**' वीतराग त्रिलोकनाथ जिनेश्वरदेव का साक्षात् उपदेश सुनकर, साक्षात् जानकर '**णच्चा**' अर्थात् जानकर। '**पुव्वावरदोसणिम्मुक्कं**' पहले और आगे-पीछे के विरोधरहित, अविरोध से मैंने इसमें कथन किया है। पूर्व में पहले कुछ कहा और फिर कुछ कहा, ऐसा विरोध नहीं है। आहाहा! आहाहा! '**णियभावणाणिमित्तं**' नीचे पाठ। '**सब दोष पूर्वापर रहित उपदेश श्री जिनदेव का। मैं जान, अपनी भावना हित नियमसार सुश्रुत रचा॥**' नीचे हिन्दी है। आहाहा!

इस सम्यक्त्वपरिणाम का बाह्य सहकारी कारण... अन्तरंग कारण कौन? अन्तरंग कारण ध्रुव। आहाहा! सम्यग्दर्शन धर्म की पहली सीढ़ी, धर्म का पहला सोपान। पगथिया (सीढ़ी का गुजराती शब्द) को क्या कहते हैं? सोपान। वह अन्तर्मुख ध्रुवस्वरूप। जड़ मोहकर्म जो है, वह भावक, उससे उत्पन्न हुआ भाव—भावक का भाव। मोहकर्म जो जड़ है, वह भावक अर्थात् भाव करनेवाला है। क्या करनेवाला? मोहकर्म भावक—भाव करनेवाला। कौन सा भाव? मिथ्यात्व, अव्रत, राग-द्वेष के परिणाम करनेवाला, ऐसा जो भावकभाव। कर्म भावक। भाव का करनेवाला। भावक का भाव; मिथ्याश्रद्धा, मिथ्याज्ञान,

मिथ्याचारित्र जो अनादि से हैं वे। वे भावक का भाव। चित्शक्ति का व्यक्तिभाव। चित्शक्ति चैतन्यमूर्ति भगवान, उस शक्ति के स्वभावरूप जो है, उसके आश्रय से व्यक्त जो प्रगट परिणाम हुए, वे सम्यग्दर्शन परिणाम हैं। आहाहा!

उस सम्यग्दर्शन परिणाम का अन्तरंग हेतु तो भगवान ध्रुव आत्मा है। **बाह्य सहकारी...** बाह्य सहकारी (अर्थात्) साथ में निमित्तरूप बाह्य कारण होता है, वह क्या? **वीतरागसर्वज्ञ के मुखकमल से निकला हुआ...** वीतराग के मुखकमल से निकली हुई वाणी अर्थात् ॐध्वनि निकली। उसमें से रचा हुआ शास्त्र। वह **समस्त वस्तु के प्रतिपादन में समर्थ...** भगवान की वाणी तीन काल, तीन लोक के पदार्थों को जानकर प्रतिपादन करने में समर्थ है। आहाहा! यह वाणी.. आया? **ऐसा द्रव्यश्रुतरूप...** वह वाणी जो है द्रव्यश्रुत। द्रव्यश्रुत अर्थात् वाणी। भावश्रुत तो अन्तर में, आत्मा में आत्मा के आश्रय से अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन होना, उसे भावश्रुत कहते हैं, परन्तु यह तो वाणी-द्रव्यश्रुत है।

वीतराग की वाणी जो ॐ दिव्यध्वनि निकली, वह द्रव्यश्रुत... आहाहा! **रूप तत्त्वज्ञान ही है।** बाह्य सहकारी कारण तो यही है। बाह्य सहकारी कारण कोई अज्ञानी के वचन हों, मिथ्यादृष्टि.. भगवान सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ ने कहे हुए के अतिरिक्त विपरीत मान्यतावाला, समकित का बाह्य कारण वह नहीं है। आहाहा! अरे रे! अन्तरंग कारण तो प्रभु है। अन्तर्मुख देखने पर चैतन्यमूर्ति भगवान आत्मा, चैतन्यशक्ति में देखने से, एकाग्र होने से चैतन्य की व्यक्ति / प्रगटता दर्शन-ज्ञान-चारित्र हुए, उनमें यहाँ सम्यग्दर्शन की बात चलती है। वह अन्तरंग कारण सम्यग्दर्शन परिणाम, उनका बाह्य कारण वीतराग के मुखकमल से निकली हुई वाणी, वह द्रव्यश्रुत, वह बाह्य सहकारण है। निमित्त में वह निमित्त ही है। वीतराग की वाणी के अतिरिक्त अज्ञानियों ने कल्पित की हुई वाणी होती है, वह बाह्य निमित्तकारण भी उसे नहीं होता। आहाहा! ऐसी बात है।

ऐसा द्रव्यश्रुतरूप तत्त्वज्ञान... वह बाह्य सहकारी कारण है। है न? **तत्त्वज्ञान ही है।** वह द्रव्यश्रुत वीतराग की वाणी ही बाह्य निमित्त है। अज्ञानियों की वाणी निमित्त नहीं है। वीतराग परमेश्वर सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ की वाणी के अतिरिक्त कोई अज्ञानी कल्पित बातें करने लगा हो, वह समकित का बाह्य कारण भी नहीं है। आहाहा! अन्तरंग कारण तो है ही नहीं। समझ में आया? बाह्य सहकारी कारण भी अज्ञानी (अर्थात्) सर्वज्ञ वीतराग के अतिरिक्त किसी की वाणी बाह्य में निमित्त भी नहीं है। आहाहा! **ही है**—ऐसा लिखा

है न ? **द्रव्यश्रुतरूप तत्त्वज्ञान ही है।** वह एक ही निमित्त है; दूसरा कोई निमित्त नहीं हो सकता। आहाहा! अब यह वीतराग की वाणी क्या ? इसकी परीक्षा पहले करनी पड़े न ? यह कोई वीतराग की वाणी है या अज्ञानी ने कल्पित की है और अपने स्वरूप के भान बिना अपनी कल्पना से शास्त्र बनाया है ? या वीतराग की वाणी से बनाया है ? उसकी परीक्षा करनी पड़ेगी। आहाहा! समझ में आया ? यह कहा—यह **तत्त्वज्ञान ही है।** अब.. आहाहा! जरा सूक्ष्म बात है। अब अन्तर के अवलम्बन से जो सम्यग्दर्शन परिणाम उत्पन्न हुए, बाह्य सहकारी कारण वीतराग की वाणी, तथा एक अन्तरंग कारण; है तो बाह्य कारण, परन्तु उसे अन्तरंग कारण कहते हैं। किस प्रकार से ? देखो!

जो मुमुक्षु हैं, उन्हें भी उपचार से... जो सम्यग्दृष्टि जीव हैं, धर्मी हैं, उन्हें उपचार से-व्यवहार से **पदार्थनिर्णय के हेतुपने के कारण...** वास्तविक पदार्थ के निर्णय के कारणरूप से-हेतुरूप से **(सम्यक्त्वपरिणाम के) अन्तरंग हेतु कहे हैं,...** आहाहा! क्या कहा ? सम्यग्दर्शन परिणाम में अन्तरंग हेतु तो शुद्ध ध्रुव ही है, परन्तु सम्यग्दृष्टि धर्मी जीव है, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्राप्त है, उसका अभिप्राय है, वह अन्दर समझने का है; इसलिए उस अभिप्राय को अन्तरंग कारण कहा है। है तो बाह्य कारण। आहाहा! ऐसी बात अब! समझ में आया ?

जैसे भगवान की वाणी द्रव्यश्रुत बाह्य कारण है, वैसे समकिती धर्मी की वाणी भी बाह्य कारण है, तथापि मुमुक्षु धर्मी जीव को उपचार से, व्यवहार से **पदार्थनिर्णय के हेतुपने के कारण (सम्यक्त्वपरिणाम के) अन्तरंग हेतु कहे हैं,...** आहाहा! है तो भगवान, अपने स्वरूप से परिणाम प्रगट हुए। बाह्य कारण में द्रव्यश्रुत-भगवान की वाणी ली और एक धर्मी जीव ने भी जो धर्म सुनाया, वह लिया है। अतः उस धर्मी जीव का अभिप्राय अन्तर में समझने के लिये उस जीव को अन्तरंग हेतु कहा है। है तो बाह्य। आहाहा! धीरे से समझना है, भाई! यह कहीं कथा-वार्ता नहीं है। यह तो तीन लोक के नाथ की साक्षात् दिव्यध्वनि है। आहाहा!

कहते हैं कि सम्यग्दर्शन परिणाम धर्म की पहली सीढ़ी, मोक्ष के मार्ग का पहला सोपान, उस सम्यग्दर्शन परिणाम का अन्तरंग हेतु तो ध्रुव है और बाह्य हेतु वीतराग की वाणी निमित्तकारण सहकारी है, परन्तु धर्मी जीव ने उपदेश किया और वह धर्मी सम्यक्त्वी-ज्ञानी है, उसका उपदेश है तो वह उपदेश सुनकर उसका अभिप्राय प्राप्त किया। उसका

अभिप्राय क्या है, यह पकड़ लिया; इस कारण सम्यक्त्वपरिणामी जीव को, उस धर्मी जीव के परिणाम अन्तरंग कारण कहा गया है। आहाहा! अरे रे! ऐसी बातें कभी सुनने को मिले?

अरे! भगवान! जिनेश्वरदेव तीन लोक के नाथ... आहाहा! परमात्मा, जिन्हें इच्छा का तो नाश हो गया है। वाणी तो वाणी के कारण से निकलती है। ॐध्वनि उठती है। आहाहा! शरीर बन्द, होंठ बन्द, कण्ठ बन्द; पूरे शरीर में से ॐध्वनि उठती है। वह ॐध्वनि सुनकर गणधर शास्त्र रचते हैं। वे शास्त्र समकिती को बाह्य सहकारी कारण कहने में आये हैं। आहाहा! तदुपरान्त धर्मी ने जो आत्मज्ञान का, सम्यग्दर्शन का, मोक्षमार्ग का उपदेश दिया, वह मुमुक्षु जीव। जिसने उपदेश दिया, वह मुमुक्षु जीव... आहाहा! है?

मुमुक्षु हैं, उन्हें भी उपचार से... वे तो पर हैं न? **पदार्थनिर्णय के हेतुपने के कारण...** अन्तर पदार्थ आत्मा और राग की भिन्नता के निर्णय में निमित्त होने के कारण। **हेतुपने के कारण अन्तरंग हेतु कहे हैं,...** आहाहा! उसका जो धर्म, परिणाम, धर्म का जो उपदेश दिया, वह इसने सुना और अपने सम्यक् परिणाम अपने ध्रुव के अवलम्बन से उत्पन्न हुए, उसे बाह्य सहकारी निमित्त वीतराग की वाणी है और मुमुक्षु जीव के अन्तर का अभिप्राय, वह अन्तरंग से, उपचार से हेतु कहा गया है। आहाहा! है तो बाह्य। समझ में आया? परन्तु अन्तर में उसका अभिप्राय समझता है। अन्तर में समझता है तो अपने ध्रुव के आश्रय से, परन्तु उपदेशक निमित्त ज्ञानी धर्मात्मा सम्यग्दृष्टि जो है, उनका अभिप्राय समझने में अन्तरंग हेतु उपचार से, व्यवहार से कहने में आता है। आहाहा! एक शब्द भी बदले तो फेरफार हो जाये ऐसा है, बापू! यह वीतराग की वाणी है, यह कहीं कथा-वार्ता नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

समकिती को, ध्रुव के अवलम्बन से धर्म परिणाम जिसे अन्तर से उत्पन्न हुए, वह अन्तरंग कारण तो आत्मा ही है, परन्तु वीतराग की वाणी को बाह्य सहकारी कारण निमित्त कहा है। एक बात। और एक बात, वह वाणी कहनेवाले का अभिप्राय, अन्तर में समझना है परन्तु वह अभिप्राय है तो पर। है तो उपचार से, पर परन्तु उपचार से, व्यवहार से अन्तरंग कारण कहा है। आहाहा!

मुमुक्षु : बहुत स्पष्टीकरण किया।

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्दर है न! आहाहा! अरे रे! अनन्त काल हुआ, इसके जन्म-मरण मिटे नहीं। चौरासी के अवतार में सत्यवस्तु मिली नहीं। असत्य में सत्य मानकर जिन्दगी गँवा दी। आहाहा! वास्तविक सर्वज्ञ वीतराग त्रिलोकनाथ परमात्मा की वाणी में क्या परमार्थ आया है? वह कभी सुनने को मिला नहीं और सुनने को मिले तो अन्तर में निर्णय करने का समय नहीं। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि सम्यग्दर्शन / धर्म के परिणाम। परिणाम है। वस्तु तो त्रिकाली ध्रुव है, परन्तु उसके अवलम्बन से जो सम्यग्दर्शन परिणाम उत्पन्न हुआ, उसका बाह्य सहकारी कारण वीतराग के श्रीमुख से निकली हुई वाणी है, उसे बाह्य सहकारी कारण कहते हैं और जो इसे उपदेश देनेवाले सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्राप्त आत्मा, वह इसे उपदेश देनेवाले समकिती को, उस पुरुष को भी यहाँ अन्तरंग कारण कहने में आया है। है तो बाह्य। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु हैं, उन्हें भी... उन्हें 'भी' क्यों कहा? कि द्रव्यश्रुत तो पहले निमित्त कहा, भगवान की वाणी बाह्य द्रव्यश्रुत को निमित्त कहा। यह भी है तो निमित्त। इसलिए कहा कि... आहाहा! **मुमुक्षु हैं, उन्हें भी...** उन्हें भी। वाणी को तो द्रव्य (श्रुत) सहकारी कारण कहा, वाणी साथ में होती है। वह सम्यग्दर्शन प्राप्त करनेवाला अन्तरंग से प्राप्त करता है। उसे बाह्य से वीतराग की वाणी निमित्त है। **उन्हें भी उपचार से पदार्थनिर्णय के हेतुपने के कारण...** पदार्थ के निश्चय के हेतुपने के कारण **(सम्यक्त्वपरिणाम के) अन्तरंग हेतु कहे हैं,...** वे सम्यक्त्व परिणाम जो उत्पन्न हुए उसे धर्मी जीव को अन्तरंग हेतु कहा जाता है। आहाहा! अरे रे! क्या?

क्योंकि... अन्तरंग हेतु क्यों कहा? उन्हें दर्शनमोहनीय कर्म के क्षयादिक हैं। किन्हें? सुनानेवाले को। सुनता है, उसने तो सम्यग्दर्शन प्राप्त किया है, तो बाह्य सहकारी कारण द्रव्यश्रुत वीतराग की वाणी है और जो मुमुक्षु हैं, उन्हें समझाते हैं। मुमुक्षु जीव जो समझाते हैं, उन्हें दर्शन मोहनीयकर्म के क्षयोपशम, क्षयादिक हुए हैं। आहाहा! मिथ्यादृष्टि या अज्ञानी निमित्त नहीं होते, ऐसा सिद्ध करना है। इस कारण बाह्य है—द्रव्यश्रुत भी बाह्य है और मुमुक्षु जो उपदेशक हैं, समकिती हैं, वे भी बाह्य हैं परन्तु उनका अभिप्राय समझने में निमित्त है तो उन्हें अन्तरंग कारण कहा है। उस वाणी से भी जोर (वजन) देने के लिये

उन्हें अन्तरंग कारण कहा है। आहाहा! अरे रे! यह पढ़े कब और सुने कब? आहाहा! जिन्दगी चली जा रही है।

क्षण में उड़ जाता है, देखो न! चुन्नीभाई का चिमन, कैसा शरीर! मुम्बई। यहाँ उनका घर है। ऐसा शरीर देखो तो लट्ठ जैसा ऐसा। क्षण में हार्टफेल हुआ, उड़ गया। हार्टफेल हो गया। हार्टअटैक कहे अर्थात् हार्ट का हूमलो। अटैक अर्थात हूमलो कहलाता है। हार्टफेल कहलाता है अर्थात् हार्ट छूट गया। आहाहा! मूल तो ऐसा होता है कि जिसे देह छूटने का प्रसंग होता है, तब खून होता है, वह जम जाता है, अन्दर जम जाता है। उसे अपने पुराने लोग हृदय के पाटिया भींसाय छे, ऐसा कहते हैं। मूल तो यह अन्दर खून घूमता है, वह खून अन्दर जम जाता है। जम जाता है, इसलिए श्वास रुक जाती है। श्वास रुक जाती है, इसलिए श्वास निकलती नहीं और पीड़ा.. पीड़ा.. पीड़ा.. आहाहा! उसमें देह छूट जाती है। आहाहा! यहाँ तो बहुत देखा है, बापू! यह तो ९१ वर्ष हुए। अठारह वर्ष की छोट उम्र से तो देखते हैं। दुनिया को, व्यापार को, धन्धे को, धर्म को, शास्त्र को देखते हैं। आहाहा! कहाँ-कहाँ बेचारे दुःखी।

यहाँ कहते हैं वे अन्तरंग हेतु कहे हैं। हैं तो बाह्य। इसका अर्थ दूसरा करते हैं कि अन्तरंग हेतु तो समकिती को दर्शनमोहनीय का क्षय हुआ है, उसे कहना - ऐसा कहते हैं। ऐसा अर्थ नहीं है। जो समकित प्राप्त हुआ है, उसके दर्शनमोह का क्षयोपशम, क्षायिक आदि लेना, ऐसा कहते हैं। ऐसा नहीं है। ... उसे जो निमित्त है, द्रव्यश्रुत निमित्त है, तो वह अभिप्राय, कहनेवाले के अभिप्राय को अन्तरंग हेतु कहा है।

क्योंकि उन्हें... उन्हें अर्थात् जिन्होंने धर्म का उपदेश दिया है उन्हें। अन्तरंग निमित्त कारण जिन्हें कहा है उन्हें, **दर्शनमोहनीय कर्म के क्षयादिक हैं।** सामने समकिती जीव है। क्षायिक समकित है, क्षयोपशम समकित है। वह जीव, उनके अभिप्राय को अन्तरंग कारण कहने में आता है। प्राप्त करनेवाले का अन्तरंग कारण तो ध्रुव है परन्तु बाह्य से, उपचार से उस धर्मी जीव को भी अन्तरंग कारण कहते हैं। आहाहा! ऐसी बात अब! ओहोहो! वीतराग सर्वज्ञ का विरह पड़ा। पंचम काल। आहाहा! उनका हृदय, उनके अन्तर के अभिप्राय से निकली हुई वाणी क्या है? उसका अर्थ करने में बहुत गड़बड़ हो गयी है। आहाहा! इसमें तो अपना हित है, प्रभु! सत्य की शरण लेगा तो अपना हित होगा। असत्य की शरण लेगा तो अहित होगा। यह तो हित-अहित स्वयं के लिये बात है। और सर्व प्राणी...

द्रव्यसंग्रह में तो ऐसा कहा, 'सर्व प्राणी इस बात को समझो और मोक्ष जाओ। आठ कर्म का नाश होकर सर्व मोक्ष जाओ'—ऐसा हम कहते हैं, ऐसा आया है। आहाहा! धर्मी स्वयं तो आठ कर्म का नाश करके मोक्ष जानेवाले हैं। परन्तु द्रव्यसंग्रह में.. आहाहा! एक (ध्यान के प्रकरण में) चार विचार आते हैं न? आज्ञाविचय, अपायविचय, विपाकविचय, संस्थानविचय - ऐसे धर्मध्यान के चार बोल हैं। धर्मध्यान के चार बोल। आहाहा! उनमें अपायविचय का अर्थ किया है, अपाय अर्थात् निश्चय करना, विचारना। उस विचार में ऐसा विचार करना कि मैं तो आठ कर्मरहित हो जाऊँगा। मेरी चीज़ आनन्दकन्द है और राग से भिन्न भान हुआ है। मैं एक-दो भव में आठ कर्म से रहित होऊँगा परन्तु सर्व प्राणी आठ कर्म से रहित होकर मोक्ष को प्राप्त करो—ऐसी भावना वहाँ द्रव्यसंग्रह शास्त्र में ली है। आहाहा! सर्व प्राणी.. आहाहा! प्रभु! कोई दुश्मन नहीं, कोई बैरी नहीं, कोई आत्मा हीन नहीं। सब परिपूर्ण परमात्मशक्ति से भरपूर आत्मा हैं। आहाहा! प्रभु! इस शक्ति की व्यक्ति हो जाओ, ऐसा कहते हैं। यह शक्ति है, उसकी व्यक्ति / प्रगटता मुझमें होगी। आहाहा! तो सब प्राणियों की शक्ति की व्यक्ति हो जाओ। कोई प्राणी संसार में दुःखी न रहो। जन्म-मरण के दुःख में न रहो। आहाहा! ऐसी भावना भायी है। द्रव्यसंग्रह शास्त्र है। हमने तो हजारों शास्त्र देखे हैं। करोड़ों श्लोक... आहाहा! अपायविचय में यह लिया है।

समयसार की ३८ गाथा में भी ऐसा ही लिया है कि हम कहते हैं, वह समझकर प्रभु! तू अप्रतिहत... कैसा? क्या कहलाता है? अबुद्ध था। श्रोता अबुद्ध था। उसे गुरु ने समझाया कि आत्मा आनन्दमय, राग से भिन्न है। वह समझा और वह ऐसा समझा... ऐसा पाठ है। समयसार की ३८वीं गाथा है। ऐसा समझा कि फिर से गिरे नहीं। वह ज्ञान और आनन्द से मुक्ति लेगा, ऐसा होगा। अप्रतिबुद्ध को भी ऐसा समझाया और प्रतिबुद्ध को भी ऐसा हुआ। ऐसे अप्रतिबुद्ध योग्य (पात्र) लिये हैं। आहाहा! भगवान! तू भी लोकालोक को जाननेवाला हो जा। आहाहा! ऐसी तो बात दो-तीन जगह है। सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार में है, बन्ध अधिकार में है, परमात्मप्रकाश शास्त्र में भी यह बात है। सर्व जीव मन-वचन-काया से छूटकर; करना-कराना-अनुमोदन विकल्प है, उसे छोड़कर सब भगवान हो जाओ। प्रभु! परमात्मा हो जाओ। इस संसार के जन्म-मरण तुझे कलंक है, नाथ! आहाहा! ऐसी बात है।

यहाँ कहते हैं, **अन्तरंग हेतु कहे हैं, क्योंकि उन्हें दर्शनमोहनीय कर्म के क्षयादिक**

हैं। किसे ? प्राप्त करनेवाले को नहीं। जो समझानेवाला धर्मी है, वह समकिती है। दर्शन -मोह के क्षयादिक हुए हैं। उसकी वाणी इसने सुनी और अन्दर का अभिप्राय पकड़ा तो इस कारण से उनको अन्तरंग हेतु कहा गया है। आहाहा! इन दो लाईनों का ऐसा अर्थ है। अब इसमें पढ़े कौन और विचारे कौन ? आहाहा! दुनिया में अज्ञान चलता आता है। अकस्मात् मृत्यु आ जाती है। इसे कहीं मृत्यु पहले कहने आती है कि मैं अब आती हूँ। देह छूटने का अवसर, आती हूँ—ऐसा कहे ? आहाहा! देह छूटने के समय... एकदम। वह छूटी हुई ही है। एक कहाँ है। आत्मा भिन्न, यह (शरीर) भिन्न। अरे! अन्दर राग और द्वेष, पुण्य और पाप के भाव तथा प्रभु आत्मा दोनों भिन्न हैं। आहा!

जैसे धुली दाल में छिलके और दाल जैसे भिन्न हैं। धुली दाल श्वेत होती है। ऊपर का छिलका भिन्न है। इसी प्रकार भगवान आत्मा धुली दाल जैसा निर्मलानन्द है और पुण्य तथा पाप छिलके जैसे ऊपर हैं। आहाहा! ऐसी वीतराग की वाणी! तीन लोक के नाथ सीमन्धरस्वामी भगवान महाविदेह में साक्षात् विराजते हैं। इन्द्र जाते हैं, सिंह, बाघ, और नाग भगवान की वाणी सुनने जाते हैं। आहाहा! सबेरे, दोपहर और शाम। आहाहा! और उनमें से कुछ समझकर मोक्ष चले जाते हैं। अभी यहाँ से तो मोक्ष नहीं है। सिद्धान्त में पाठ है कि छह महीने और आठ समय में छह सौ आठ जीव मनुष्यक्षेत्र में से मुक्त होंगे। क्या कहा ? यह मनुष्यक्षेत्र पैंतालीस लाख योजन में है। बाकी असंख्य द्वीप, समुद्र तिर्यंच से भरे हुए हैं। तिर्यंच / ढोर / पशु। असंख्य द्वीप समुद्र। यह ढाई द्वीप जो है, उस पैंतालीस लाख योजन में ही मनुष्य है। आहाहा! तो इन मनुष्य में सब आत्मा प्राप्त करो। आहाहा! सबको आत्मज्ञान हो जाओ। असंख्य तिर्यंच बाहर हैं परन्तु हैं समकिती। बाहर भी तिर्यंच सिंह, बाघ भी कोई समकिती हैं। असंख्य मिथ्यादृष्टि हैं तो कोई एक समकिती भी है, ऐसे असंख्य समकिती ढाई द्वीप के बाहर हैं। आहाहा!

यहाँ कहते हैं... आहाहा! ऐसी बात प्रभु! तुझे सुनने को मिली.. आहाहा! अब तुझे काम करना बाकी है, भाई! यह काम करना है। राग से भिन्न होकर भेदज्ञान करना। भेदज्ञान करने से राग का स्वामीपना उड़ जाता है और स्वरूप का स्वामीपना हो जाता है। इस प्रकार क्रम-क्रम से राग घटकर वीतराग हो जाता है। आहाहा! यह कहा, **दर्शनमोहनीय कर्म के क्षयादिक हैं।** यह व्यवहार की बात की। अब निश्चय की (बात करते हैं)।

अभेद-अनुपचार-रत्नत्रयपरिणतिवाले जीव को,... क्या कहते हैं ? कि भगवान

आत्मा अन्दर शुद्ध चैतन्यघन है, उसकी अन्तर्दृष्टि, ज्ञान और रमणता स्वभाव के आश्रय से की, वह अभेद हुआ। पर के कारण नहीं, राग के कारण नहीं, निमित्त के कारण नहीं। उस **अभेद-अनुपचार...** उपचार भी नहीं। भेद पड़े ऐसा उपचार। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, ये तीन उपचार हैं। सच्चे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, ये तीन उपचार हैं। तीन हुए तो यह उपचार है। एकरूप अभेद.. आहाहा! सच्चिदानन्द प्रभु सत् कायम रहनेवाला भगवान, चिदानन्द। चिद् अर्थात् ज्ञान और आनन्दरूप प्रभु के **अभेद-अनुपचार...** भेद भी नहीं।

रत्नत्रयपरिणति... यह निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की दशा है। ऊपर तो सम्यग्दर्शन निश्चय ही था, परन्तु बाहर का व्यवहार बताया था। यह तो अन्तरंग अकेला अभेद... आहाहा! शुद्ध चैतन्यघन आत्मा, जिसमें दया, दान, व्रत के विकल्प की भी गन्ध नहीं, ऐसा निर्मलानन्द प्रभु।

ज्यों निर्मलता रे स्फटिक की, त्यों ही जीव स्वभाव रे।
ज्यों निर्मलता रे स्फटिक की, त्यों ही जीव स्वभाव रे।
श्री जिन वीर ने धर्म प्रकाशियो, श्री जिन वीर ने धर्म प्रकाशियो
प्रबल कषाय अभाव रे,

इसमें राग और पुण्य का ठिकाना नहीं। आहाहा! पुण्य-पाप ये दो कषाय हैं। कष अर्थात् संसार और आय अर्थात् लाभ। कषाय शब्द में दो शब्द हैं। कषाय—कष अर्थात् संसार, आय अर्थात् लाभ। इन पुण्य-पाप के परिणाम से-कषाय से संसार के परिभ्रमण का लाभ मिलता है। आहा! वीर ने कषाय के अभाव को धर्म बताया है। आहाहा! तीन लोक के नाथ जिनेन्द्रदेव, जैसे निर्मल स्फटिक वैसे निर्मलानन्द प्रभु अन्दर है। पुण्य-पाप का मैल ऊपर है। जैसे छिलका ऊपर होता है। तुम्हारे (हिन्दी में) फोतरा को क्या कहते हैं? छिलका। आहाहा! ऐसे एकरूप चैतन्य की दृष्टि-ज्ञान और रमणता एकरूप। तीन भी नहीं। तीन करे तो उपचार-भेद हो जाये।

अभेद-अनुपचार... अनुपचार अर्थात् तीन भेद नहीं। तीन का एकरूप। भगवान आनन्द का नाथ प्रभु, उसकी दृष्टि, ज्ञान और रमणता तीनों एकरूप हो जाये, उसे यहाँ अभेद-अनुपचार कहते हैं। आहाहा! **अभेद-अनुपचार...** क्या? रत्नत्रय। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र रत्नत्रय। तीन रत्न। आहाहा! जिस रत्न के मोल में मुक्ति मिलती है। दुनिया

के रत्न में तो पैसा-धूल मिले। आहाहा! इन्दौर से सेठ आये थे न, कितने लाख का? कोई दस लाख का हार पहना हुआ। नीलमणी का। आहाहा! वे तो धूल के टुकड़े हैं। आहाहा! यह तो आत्मा चैतन्यरत्न... आहाहा! रत्नत्रय। सम्यग्दर्शन, शुद्ध चैतन्यस्वरूप का अनुभव, प्रतीति और शुद्ध चैतन्य का ज्ञान.. शास्त्रज्ञान भी नहीं; और उस शुद्धचैतन्य की रमणता-चारित्र। चारित्र अर्थात् चरना, रमना, जमना, अन्दर जमना। आहाहा! ऐसी जो **अभेद-अनुपचार-रत्नत्रयपरिणति...** अर्थात् पर्याय। तीन रत्नत्रयरूपी अवस्था। मोक्ष का मार्ग। आहाहा!

अभेद... अर्थात् कि **अनुपचार...** क्या? यहाँ लाईन की न? अभेद क्या? कि अनुपचार। अनुपचार कौन? कि रत्नत्रयपरिणति। आहाहा! मार्ग अलग प्रकार का है, प्रभु! अनन्त-अनन्त काल में कभी एक सेकेण्ड भी आत्मज्ञान किया नहीं। साधु हुआ, त्यागी हुआ, श्रावक हुआ, स्त्री, पुत्र, हजारों रानियाँ छोड़ी परन्तु अन्तर में आत्मज्ञान बिना सब व्यर्थ गया। आहाहा! जन्म-मरणरहित होने की चीज़ यह रत्नत्रय परिणति है। इसके बिना सब शून्य है। आहाहा!

रत्नत्रयपरिणति-पर्याय। परिणति अर्थात् अवस्था। निश्चय, अभेद। दर्शन, ज्ञान, चारित्र तीन का भेद नहीं। तीनों का एकरूप, ऐसी **रत्नत्रयपरिणतिवाले जीव को, टंकोत्कीर्ण ज्ञायक जिसका एक स्वभाव है...** आहाहा! टाँकी से उकेरकर जैसे अन्दर से मूर्ति निकाले, वैसे प्रभु अन्दर में राग के टंकण निकालकर अन्तर से निर्मलानन्द टंकोत्कीर्ण प्रभु निकला। आहाहा! ऐसा **टंकोत्कीर्ण ज्ञायक...** जाननस्वभाव। जिसका अकेला जाननस्वभाव, प्रज्ञास्वभाव। प्रज्ञाब्रह्मस्वरूप भगवान। जानन और आनन्दरूप जिसका स्वरूप अन्दर है। ऐसा **ज्ञायक जिसका एक स्वभाव है...** आहाहा! निश्चय में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों अभेद कहे, अनुपचार कहे और भेद नहीं। अब इन तीन में एक। ये तीन नहीं। अन्तर भगवान पूर्णानन्द का नाथ अन्दर है, उसमें दर्शन-ज्ञान-चारित्र की एकता हुई। तीनों की अतीन्द्रिय आनन्द के वेदन के साथ तीनों का एकत्व आत्मा के साथ हुआ। आहाहा! अरे रे! ऐसी बात है। कथा-वार्ता होवे तो कुछ बैठे (समझ में आये), किसी का ऐसा कर दे, दया पाले, पैसा दे, भूखे को आहार देना, प्यासे को पानी देना, रोगी को दवा देना, मकान न हो उसे स्थल दे तो समझ में तो आये। क्या दे? बापू! एक रजकण भी

आत्मा दे नहीं सकता, ले नहीं सकता। आत्मा के अतिरिक्त परद्रव्य को कभी छूता भी नहीं। एक शरीर को आत्मा स्पर्श नहीं करता, आत्मा अन्दर अत्यन्त भिन्न है। अरे रे! कभी शरीर को स्पर्श नहीं किया तो आहार-पानी रोटी, स्त्री, कुटुम्ब को (स्पर्श करे, ऐसा नहीं है)। भगवान! भगवान का पुकार है कि भगवान! तू एक तत्त्व दूसरे तत्त्व को कभी स्पर्श नहीं किया है। आहाहा! अरे रे! ऐसी वाणी सुनने को मिले नहीं, वह कब समझे और कब काल निकाले? आहाहा!

कहते हैं कि देखो! तीन रत्नत्रयपरिणति कही। तीन कही न? अन्दर सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र। तीन कही परन्तु वस्तु एक है। द्रव्य एक ज्ञायक है। आहाहा! **ज्ञायक जिसका एक स्वभाव है—ऐसे निज परमतत्त्व की श्रद्धा द्वारा,...** ऐसा निज परमतत्त्व भगवान अन्दर ज्ञानमूर्ति प्रभु, उसके अन्तर की श्रद्धा द्वारा, **तद्ज्ञानमात्र (उस निज परमतत्त्व के ज्ञानमात्रस्वरूप)...** शास्त्रज्ञान भी नहीं। वह तो परवस्तु है। अन्तर ज्ञानस्वरूप। जैसे शक्कर में मीठास और सफेदाई भरी है, जैसे अग्नि में उष्णता है; वैसे भगवान आत्मा में ज्ञान और आनन्द भरे हैं। अरे रे! आहाहा! इस आनन्द और ज्ञान की एकता **निज परमतत्त्व की श्रद्धा द्वारा, तद्ज्ञानमात्र (उस निज परमतत्त्व के ज्ञानमात्रस्वरूप) ऐसे अन्तर्मुख परमबोध द्वारा...** अन्तर्मुख परमज्ञान द्वारा। आहाहा! दो बोल लिये। दो बोल कौन से? निज परमतत्त्व की श्रद्धा द्वारा और तद्ज्ञानमात्र अन्तर्मुख परमबोध द्वारा—श्रद्धा और ज्ञान दो लिये।

और उसरूप से (अर्थात् निज परमतत्त्वरूप से) अविचलरूप से स्थित होनेरूप... और चलित नहीं, ऐसे अन्दर स्वरूप में स्थिर हो। समकितसहित, ज्ञानसहित स्थित हो, उसका नाम अविचल, स्थित अर्थात् चारित्र। है? **अविचलरूप से स्थित होनेरूप सहजचारित्र...** स्वाभाविक चारित्र। आहाहा! उसके **द्वारा अभूतपूर्व सिद्धपर्याय होती है।** आहाहा! ऐसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र द्वारा एकरूप ज्ञायक द्वारा सिद्धपद की पर्याय, परमात्मा की पर्याय उत्पन्न होती है। दूसरा कोई उपाय नहीं है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)